International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 370-372

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 370-372
www.allresearchjournal.com
Received: 21-11-2015
Accepted: 23-12-2015

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय ढलियारा कांगडा हि.प्र.

Correspondence
डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय ढलियारा कांगडा हि.प्र.

जैन साहित्य–परम्परा और प्रवृत्तियां

डॉ. शिवदत्त शर्मा

भारत विभिन्न धर्मों एवं परम्पराओं का देश है। समयसमय पर अनेक धर्म इस देश में पनपे। अनेक आक्रान्ताओं ने आ कर अपने धर्म की जडें जमाने का प्रयास किया। भारत अत्यन्त सहिष्णु होने के कारण विश्व के धर्मों के प्रति सदैव सहिष्णु रहा है। वसुधैव कुटुम्बकम की भावना यहां सदैव विद्यामान रही हैं।

हिन्दी साहित्य का इतिहास भी इस का प्रमाण है कि इस देश में जितने धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ, सम्भवतः अन्यत्र कम ही दिखाई देता है। वैदिक धर्म से बौद्ध, जैन तथा सगुण एवं निर्गुण उपासना के ढंग केवल इसी देश में दिखाई देते हैं, इसके उपरान्त इस्लाम अनेक वर्षों का शासन इस देश में रहा। इसका मिला जुला असर हमारे जीवन दर्शन पर न्यूनाधिक अवश्य पडा है। 1

आदिकालीन भारत के पूर्वी क्षेत्रों में सिद्धों ने अपने सम्प्रदाय के नियमों, सिद्धान्तों आदि के प्रचार–प्रसार के लिए हिन्दी कविता को अपना साधन बनाया। दूसरी ओर उसी प्रकार तत्कालीन भारत के पश्चिमी क्षेत्रों में जैन आचार्यों, कवियों आदि ने अपने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए काव्य को आधार बनाया। इन जैन आचार्यों ने अपने धर्म के प्रसार के लिए जिस साहित्य का निर्माण किया, उसे जैन साहित्य कहते हैं। इस साहित्य में अपभ्रंश भाषा का प्रयोग हुआ है, अतः इसे अपभ्रंश साहित्य भी कहा जाता है। इस जैन रचित साहित्य में धर्म और साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है।2

जैन साहित्य का प्रादुर्भाव एवं विकास–

भारतीय इतिहास के अनुसार जैन साहित्य की परम्परा लगभग सातवीं शताब्दी से मानी जाती है। इस परम्परा का अस्तित्व सोलहवीं सदी तक दिखाई देता हैं। इस परम्परा के प्रथम कवि स्वयंभू को माना जाता है। अनेक विद्वान इस मत से असहमत भी हैं तथा स्वयंभू को जैन साहित्य का पहला कवि नहीं मानते। फिर भी अधिकांश स्वयंभू को ही जैन साहित्य का प्रथम कवि मानते हैं। विषय के आधार पर जैन साहित्य को निम्न लिखित उपभागों में बांटा जा सकता है–

1 पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाश्रित चरितकाव्य
2 लोकाश्रित सामान्य चरितकाव्य
3 उपदेशात्मक मुक्तक काव्य
4 श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य
5 छन्द व व्याकरण आधारित शास्त्रीयग्रंथ

अब इन पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।इस तरह जैन साहित्य को विस्तार से समझने में सरलता होगी।

1 पौराणिक–ऐंतिहासिक कथाश्रित चरितकाव्य–

जैन साहित्य में अनेक ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं को अपनी रचना का आधार बनाया तथा अनेक चरित काव्य लिखे। स्वयंभू कृत पउम चरिउ, हेमचन्द्र कृत कुमार पाल चरित, सोम प्रभाचार्य कृत कुमार पाल प्रतिबोध, पुष्प दन्त कृत महापुराण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

2 लोकाश्रित सामान्य चरितकाव्य–

अनेक जैन कविया ने अपनी रचना का माध्यम अनेक लौकिक पात्रों को भी बनाया ताकि जैन धर्म की प्रतिष्ठा बढे तथा उसकी महत्ता लौकिक पात्रों`के माध्यम से जनसाधारण तक पहुंच सके। इन रचनाओं में कवि आसगु कृत चन्दन बालारास कवि धनपाल कृत भविसयत कहा, पुष्प दन्त कृत जसहर चरिउ, जिनधर्म सूरि कृत स्थूलिभद्र रास आदि प्रमुख हैं।

3 उपदेशात्मक मुक्तक काव्य–

अनेक जैन कवियों ने जैन धर्म के नियमों, सिद्धान्तों, आदि के अनुसार जन साधारण को अहिंसा, त्याग, संयम, साधना, आदि का उपदेश दिया है। इन कवियों ने ये उपदेश दोहा मुक्तक के रूप में ही प्रस्तुत किए हैं। जैन साहित्य के उपदेश प्रधान मुक्तक काव्य में देवसन कृत श्रावकाचार, रामसिंह कृत पाहुडदोहा, विजयसेन सूरि कृत रेवंत गिरि रास आदि उल्लेखनीय हैं।

4 श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य–

जैन साहित्य कोई श्रृंगार निरूपण का काव्य नहीं है फिर भी कहीं कहीं जैन साहित्य के काव्य में श्रृंगार वर्णन दिखाई दे जाता है। अब्दुल रहमान कृत संदेश रासक श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य कहा जा सकता है क्यों कि इसमें अन्य साहित्य की तुलना में अधिक श्रृगार वर्णन है।3

5 छन्द व व्याकरण आधारित शास्त्रीय ग्रंथ–

जैन साहित्य में छन्दों का शास्त्रीय विवेचन करने वाले ग्रंथ की भी रचना हुई है। स्वयंभू कृत स्वयंभू छन्द, हेमचन्द्र कृत छन्दोनुशासन, हेमचन्द्र शब्दानुशासन आदि ग्रंथों को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

इस तरह यह तो स्पष्ट है कि जैन साहित्य में अनेक प्रकार की रचनाएं रचित हुईं तथा अनेक कवियों ने भिन्न भिन्न विषयों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। जैन साहित्य के प्रमुख कवियों में जिन के नाम गिनाए जा सकते हैं वे हैं–स्वयंभू जिनकी अनेक रचनाएं है पउम चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ, स्वयंभू छन्द, पंचमि चरिउ। पुष्प दन्त की रचनाएं– महापुराण, जयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, धनपाल की रचना–भविसयत बाहुबलि रास, जिनधर्म सूरि की स्थूलि भद्र रास, आसग्र– चन्दन बाला रास, विजय सेन सूरि– रेवंतिकहा, जोइंदु की परमात्म प्रकाशयोगसार मेरुतुंग की प्रबन्ध चिंतामणि, अब्दुल रहमान – संदेश रासक, देवसेन– श्रावका चार, शालि भद्रसूरि की भरतेश्वर विजयसेन सूरि की रेवंत गिरि रास, सुमति गणि की पेमि नाथ रास, राम सिंह की पाहुड दोहा, सोम प्रभ सूरि की कुमार पाल प्रतिबोध, हेमचन्द्र की हेमचन्द्र शब्दानुशासन, छन्दोनुशासन, कुमारपाल चरित, जिनदत्त सूरि चर्चरी आदि का नाम लिया जा सकता है। उपरोक्त कवियों ने जैन साहित्य में महत्व पूर्ण योग दान दिया है।4

साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के उपरान्त यह जानने की आवश्यकता है कि जैन साहित्य की मुख्य प्रवुत्तियां क्या हैं, जिनका परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव पडा।

जैन साहित्य की प्रवृत्तियां–

1 बाह्य–उपासना, धर्म की रूढ परम्पराओं का विरोध–

जैन धर्म भी बौद्ध धर्म की तरह वैदिक धर्म के विरोध में ही प्रकट हुआ। अनेक आलोचक मानते हैं कि जैन और बौद्ध धर्म वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया है। यह सत्य भी है क्योंकि जैन धर्म में अनेक मुख्य सिद्धान्तों का वैदिक धर्म के साथ मेल नहीं खाता। जैन साहित्य में हिन्दु समाज में प्रचलित बाह्य–उपासना, मन्दिर, तीर्थ–यात्रा, मूर्तिपूजा, जातिपाति आदि का डट कर विरोध किया गया हैं।जैन धर्म में मनुष्य के लिए चारित्रिक गुणों व मन की शुद्धता को ही अनिवार्य माना हे। जैन साहित्य में गृहस्थ जीवन की निंदा की है परन्तु ऐसे कुछ एक रहस्यवादी कवियों ने ही किया है ऐसे कवियों का मानना है कि गृहस्थ जीवन साधक के मार्ग में बाधक बनता है, परन्तु उन्होंने कही भी धर्म का पालन करते हुए गृहस्थ आश्रम को त्याज्य नहीं माना है। धन, देह, सांसारिक बंधनों आदि को जैन धर्म में तुच्छ माना है। इनकी नश्वरता को देखते हुए इन से दूर रहने का परामर्श जैन धर्म में है–

देउलदेवु वि सत्थु गुरु है तित्थु वि वेउ विकब्बु।
बच्छु जु दीसइ कुसु नियउ इंधणु होसइ सब्बु।।

2 रहस्यवादी विचार धारा–

जैन साहित्य अधिकांश रास शैली में रचित है फिर भी अनेक ऐसी रचनाएं हैं जिनमें रहस्यवादी विचार धारा के प्रमाण मिलते हैं। ऐंसे कवियों ने शरीर में ही परमात्मा का वास बताया है और उस ईश्वर को परम समाधि की अवस्था में ही प्राप्त करने का वर्णन किया गया हे। इन्होंने अपने शरीर को ही मन्दिर कहा है,तथा तीर्थ स्थल को महत्व नहीं दिया है। उनका मत है कि जिस प्रकार लकडी में अग्नि छिपी रहती है, पुष्प में पराग मधु छिपा रहता है, उसी प्रकार हमारे शरीर में ही परमात्मा का निवास है–5

जिम वइसाणर, कट्ठ महिं, कुसुमइ परिमलु होइ।
तिह तेह मइ वसइ वि, आण्दा बिरला बुझइ कोइ।।

3 आत्मानुभूति –

जैन कवियों ने आत्म अनुभूति पर जोर दिया हैं और उसे ही जीवन का परम लक्ष्य माना है। आत्म अनुभव के लिए शुभ अशुभ कर्मों के क्षय करने की आवश्यकता बताई गई है। आत्मा के ज्ञान से परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। अधिकोश कवियों ने भोग की जगह त्याग, शास्त्र ज्ञान के स्थान पर आत्म ज्ञान व कर्मकाण्ड की जगह आत्मानुभूति को अधिक महत्व दिया है–

अण्णु जि तिथ्यु म जाहि जिप अण्णु जि गुरुअ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिति तुंहु, अप्पा विमल मुएविं

4 जैन धर्म का प्रतिपादन–

इस जैन काव्य में जैन धर्म के सिद्धान्त नियम आदि भरे पडे हैं। रास काव्य जैसे चन्दन बाला रास, स्थूलि भद्र रास, भरतेश्वर बाहुबलि रास आदि में तो जैन धर्मो के महत्व को सिद्ध करने के लिए धर्मों के पौराणिक व ऐतिहासिक पात्रों को जैन धर्म का अनुयायी बनने के बाद ही शान्ति व मोक्ष का अधिकारी दिखाया गया हे। भरतेश्वर बाहुबलि रास इसका उदाहरण है।

5 नर और नारी का रूप वर्णन–

जैन साहित्य में नर और नारी के रूपों का विस्तृत चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। विशेषकर नारी के रूप चित्रण में कवियों ने अधिक अभिरुचि दिखाई है। इसके लिए उन्होंने प्राकृतिक उपमानों का भी प्रयोग किया हे। उदाहरण स्वरूप पउम सिरि चरिउ में पद्म श्री के चन्दन बाला रास में चन्दायन के रूप सौंदर्य का सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रकार जैन साहित्य में पुरुष रस का सुन्दर वर्णन भी मिलता है। कहीं कहीं भद्दे एवं कुरूप पुरुषों के रूपों का वर्णन भी मिलता है।

6 प्रकृति चित्रण–

प्रकृति ने मनुष्य को सदैव आकर्षित किया है। जैन कवि भी इससे बच नहीं सके हैं। उनके काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन हुआ हे। जैन कवियों ने काव्य में रहस्यवादी रूप, उपदेशिका रूप, मानवीकरणरूप आदि का भी चित्रण किया है।6

प्रकृति के आलम्बन रूपों का सबसे कम तथा पृष्ठ भूमि के रूप में सबसे अधिक प्रकृति–वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप, मानवीकरणरूप, रहस्यवादी रूप, उपदेशिका रूप, आदि का भी वर्णन किया है। जैन कवियों ने इस तरह भाव के अनुकूल वातावरण की सृष्टि की है–

डोला तोरण वारे पई हरे–पइट्ठ वसंतु वसंत सिरी–हरे।
सइरूइ–वासहरेहि ख–गेउरन–आवसिउ महु अरि अन्तेपुरु।
कोयल का मिणीउ उज्जाणेहिं सुय सामंत लयाहर थाणेहि।

7 प्रेम के विविध रूप–

जैन साहित्य में कवियों ने प्रायः प्रेम तत्व को अपने काव्य में स्थान

दिया है, परन्तु ध्यान से देखा जाए तो पता चलता है कि कवियों ने विविध रूपों को अपनाया है। किसी विशेष सीमा में जैन कवि नहीं रहे हैं। उनके काव्य में विवाह के लिए प्रेम को स्वीकार किया गया हैतो विवाह के बाद असामाजिक प्रेम को भी स्वीकार किया है। उदाहरण के रूप में चन्दनबाला रास को लिया जा सकता है।राजा शतनीक का सेनापति चन्दनबाला के साथ एक पक्षीय प्रेम करता है, जिसमें वासना की मात्रा अधिक है। इसी तरह प्रेम के अन्य रूप भी जैन काव्य में मिलते हैं।

8 विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति–

जैन साहित्य के चरित काव्यों में तथा अन्य कुछ खण्ड काव्यों जैसे संदेशरासक आदि में विरह वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। अधिकांश कवियों ने नारी की ही विरह वेदना का अधिक चित्रण किया है। पुरुषों के विरह वर्णन में कवियों ने अधिक रुचि नहीं दिखाई है। यह जैन कवियों की विशेषता ही कही जाएगी कि जैन कवियों ने विरह वर्णन में सजीवता, स्वाभाविकता और छन्द गति तीनों का अद्‌भुत सामंजस्य किया है। सन्देशरासक तो विरह वर्णन की अनूठी कृति है। 7 एक मार्मिक सन्देश अपने पति को भेजते हुए नायिका कहती है कि जिन अंगों के साथ तुमने विलास किया है,आज वे ही अंग विरह द्वारा जलाए जा रहे हैं–

जिहि अंगहि तू बिलसिया,ते दद्धा विरहेण

9 रस निरूपण–

जैन साहित्य में वैसे तो सभी रसों का सुन्दर प्रयोग हुआ है परन्तु उसमें भी श्रृंगाररस, शान्तरस, और करुणरस की प्रधानता है। जैन धर्म प्रचार प्रसार जैन साहित्य का मुख्य उद्‌देश्य है तथा इस दृष्टि से अधिकांश स्थलों पर करुणरस भी अन्ततः शान्तरस में परिवर्तित हो गया है। विप्रलम्भ श्रृंगार के भेदों, मान, पूर्वराग, प्रवास, आदि के अनुरूप नायक–नायिका की दशा का वर्णन किया गया है। संयोग श्रृंगार की तुलना में विप्रलंभ श्रृंगार का अधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। सन्देश रासक तो विप्रलंभ श्रृंगार पर आधारित रचना है। इसमें करुण रस का एक उदाहरण देखिए–

ठाहि ठाहि बिमि सद्ध सुयरु अवहारी मणु।
णिसुणि किंपी जं जंपउं पहिप पसिज्जि खणु।।8

10 भाषा एवं शैली

जैन साहित्य की भाषा अपभ्रंश है परन्तु इसकी प्रारम्भिक रचनाओं को देख कर लगता है कि प्रारम्भिक रचनाओं में प्रयुक्त अपभ्रंश भाषा लोक भाषा के कहीं अधिक निकट हे। इसे अवहटट भाषा के नाम से जाना जाता है। जैन साहित्य की जो प्रबन्धात्मक रचनाएं हैं उनमें शुद्ध साहित्यिक अपभ्रंशभाषा का प्रयोग हुआ है। इन की भाषा नियमों–उपनियमों में जकडी सी प्रतीत होती है जबकि आरम्भिक रचनाओं में अपभ्रंश भाषा स्वछन्द सी प्रतीत होती है। इस भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए भंवरे की गुंजन के लिए कवि ने गुमगुंमत निरर्थक शब्द का सुन्दर प्रयोग किया है जो अन्यत्र नहीं मिलता। जैन साहित्य की भाषा की एक और विशेषता है कि चरित काव्य में और कथाप्रधान काव्य में कडवक शैली का प्रयोग हुआ हैं। जैन धर्म प्रचार में जैन कवियों ने उपदेशात्मक शैली का प्रयोग किया है। आध्यात्मिक विचारों के लिए जैन कवि प्रायः प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण देखिए–

पंच बलद्‌द णं रक्खियई णायण वणु ण गओसि।
अप्पुण जाणिउ णवि परुवि एमइ पव्वइ ओसि।।

11 छन्द और अलंकार योजना एवं काव्यरस–

जैन साहित्य में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। स्वयंभू कृत स्वयंभू छन्द तथा हेमचन्द्र कृत छन्दानुशासन में तो अपभ्रंश छन्दों का शास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। अन्य ग्रथों में वदनक, अडिल्ल, विलासिनी, स्कन्धक, दोहा, चउपइय, उल्लाला आदि अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है।

जैन साहित्य में काव्य के दो रूप मिलते हैं। प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में केवल चरित काव्य तथा खण्डकाव्य ही मिलते हैं। इसमें महाकाव्यों का अभाव दिखाई देता है। 9 मुक्तक काव्यों में दोहों के द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्त और नियम उपदेश विधि से बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त श्रृंगार वर्णन में भी दोहा बद्ध मुक्तक काव्य प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूचि–

1. डॉ. नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 78
2. आचार्य परशु राम उत्तर भारत की सन्त परम्परा पृ123
3. डॉ. राम खिलावन पाण्डे हिन्दी साहित्य का नया इतिहास पृ 76
4. आचार्य चतुर सेन शास्त्री इतिहास ग्रन्थ पृ. 86
5. डॉ. हरीशचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 47
6. डॉ. हरीश चन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ. 113
7. डॉ. भोला नाथ तिवारी हिन्दी साहित्य पृ 76
8. अब्दुल रहमान संदेश रासक पृ. 45
9. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ. 98